Original Research Paper History

Syadvad in Jainism

Dr Nidhi Jain M.A. ,Ph.D, Lecturer Depp. of History, St. Wilfred's PG College, Mansarover -Jaipur -20

KEYWORDS

दर्शन जगत् के व्यापक क्षेत्र में जैन दर्शन में मौलिक एवं असाधारण जो योगदान दिया है उसमें अनेकांतवाद का सिद्धाँन्त सबसे प्रथम है अनेकांतवाद जैनदर्शन की एक विचित्र अवधारणा है जो यथार्थ में सत्य स्वरुप से साक्षात् भेद करने में सहयोगी है। ऐसे इस अनेकांत सिद्धाँन्त का जो प्रतिपादन करता है, वह सिद्धाँन्त स्याद्वाद कहलाता है वस्तुतः स्याद्वाद दार्शनिक सिद्धाँन्त न होकर एक भाषा का सिद्धाँन्त है। वस्तु में पाया जाने वाला अनेक धर्म रुप कथन अनेकांत है तो उसको सम्यक् प्रकार से समझाने वाला भाषिक सिद्धाँन्त ही स्याद्वाद कहा जाता है। स्वयं स्याद्वाद शब्द ही भाषिक सिद्धाँन्त को सूचित करता है। स्याद्वाद में दो शब्द है स्यात् तथा वाद अव्यय है, जिसका अर्थ होता है कथंचित्, किसी अपेक्षा से या इस अपेक्षा से इस बात का सूचन करता है, इत्यादि स्याद्वाद शब्द है बाद का अर्थ है सिद्धाँन्त मत या प्रतिपादन आचार्य अमृतचंद्र ने अपनी टीका में स्यात् का अर्थ स्पष्ट किया है।

सर्वथात्व–निषेधको•नेकान्ततोन्द्योतकः कथंचिदर्थे स्यात् शब्दो[115] निपातः अर्थात् स्यात् शब्द कथंचित् अर्थ का सूचक है एवं अनेकांत की व्याख्या सूचित करता है समस्त जैन ऋषि मुनियों ने स्याद्वाद को अपनी चिंतन धारा का मुख्य बिन्दु बनाया है स्याद्वाद के इस चिंतन से प्रत्येक व्यक्ति सत्य के प्रत्येक पहलू से परिचित हो जाता है। वास्तव में सम्पूर्ण सत्य का बोध करने के लिए स्याद्वा दही केवल एक संसाधन है। स्याद्वाद विचारधारा के बिना विशाल सत्य को समझना संभव नहीं है। जो विचारक वस्तु के अनेक धर्मो को स्वकीय दृष्टि से छिपाकर के मात्र एक ही धर्म को पकड़कर उलझ जाता है तो सत्य का साक्षात्कार नहीं कर सकता है। इसी कारण समन्तभद्र आचार्य ने स्यात् शब्द को सत्य का प्रतीक माना है– स्यात्कारः सत्यलांछनम ,स्याद्वाद दृष्टिकोण एक ही वस्तु में नित्यानित्यता, सदृश्यता, विसदृश्यता, वाच्यता, अवाच्यता, सत्ता–असत्ता आदि पारस्परिक विरुद्ध धर्म से प्रतीत होने वाले धर्मों का विरोध न करके उनका सुन्दर एवं बुद्धि समन्वय प्रस्तुत सामान्य तौर से स्याद्वाद और अनेकांत को एक समझा जाता है परंतु बारिकी से चिंतन करने पर सिद्ध होता है कि दोनों में प्रतिपाद्य – प्रतिपादक संबंध है स्याद्वाद तो अनेंकांत्मक वस्तु को भाषा के माध्यम से प्रकट करता है अतः कहा जा सकता है कि स्याद्वाद एक श्रुत है जबकि अनेकांत वस्तु में समाहित तत्त्व है। आचार्य समन्तभद्र ने स्पष्ट किया है कि –

स्याद्वाद और केवलज्ञान दोनो ही वस्तु स्वरुप को बताने वाले है अंतर केवल इतना ही है कि केवलज्ञान वस्तु को साक्षात् जानता है जबकि स्यद्वाद श्रुत का विकल्प होने से असाक्षात् जानता है।

आचार्य अमृतचंद्र ने स्याद्वाद को एक उदाहरण से स्पष्ट किया है–
ग्वालन मक्खन की प्राप्ति तभी कर पाती है जब वह मथानी की रस्सी के एक छोर को खीचती है और दूसरे छोर को खीचे और दूसरे को ढीला न छोड़े तो मक्खन की प्राप्ति नहीं हो सकती उसी प्रकार जब तक एक दृष्टिकोण को गौण करके दूसरे दृष्टिकोण को प्रधान रुप से विकसित किया जाता है, तभी सत्य रुपी मक्खन की प्राप्ति होती है अर्थात् उससे साक्षात्कार करता है या वस्तु स्वरुप का बोध होता है। स्याद्वाद की दृष्टि से सत् कभी नष्ट नहीं होता है और असत्य कभी नष्ट नहीं होता है इस बात को आचार्य अमृतचंद्र ने पंचास्तिकाय की गाथा नं. 15 में स्पष्ट किया है, ऐसी कोई स्थिति नहीं जिसके साथ उत्पाद और विनाश न रहा हो अर्थात् जिनकी पृष्ठ भूमि में स्थिति है उनका उत्पाद और विनाश अवश्य होता है ।

आत्मा शरीर से भिन्न है या अभिन्न – इस विषय में दार्शनिक जगत् में विभिन्न प्रकार के मत प्राप्त होते है। चार्वाक दर्शन आत्मा को शरीर से भिन्न नहीं मानता है, वह शरीर से ही चैतन्य की उत्पत्ति मानता है और शरीर के नष्ट होने पर आत्मा को नष्ट होना मानता है इत्यादि अनेक दर्शन आत्मा को शरीर से एकांत भिन्नत्व भी स्वीकार करते हैं किन्तु आचार्य अमृतचंद्र ने अपने आध्यात्मिक जगत् में भी विवेचन किया है। उससे फलितार्थ होता है कि आत्मा कथंचित् शरीर से भिन्न भी है और अभिन्न भी है आत्मा को शरीर से भिन्नत्व ना माना जाय और दोनों का एकत्व स्वीकार किया जाय तो शरीर के नाश के साथ आत्मा का भी नाश मानना होगा । और उस स्थिति में पुर्नजन्म और मोक्ष की कल्पना वेकार हो जायगी परंतु आगम और युक्ति से पुर्नजन्म आदि की सिद्धि होती है अतः शरीर को आत्मा से भिन्न भिन्न मानना ही युक्ति संगत है साथ ही अनादि काल से आत्मा शरीर के साथ हो रहा है, हुआ है, और अपने किये हुये कर्मों का फल शरीर के माध्यम से भोगता है किन्तु आचार्य अमृतचंद्र ने एकदम स्पष्ट अध्यात्म रीति से आत्मतत्त्व की सिद्धि की है और आत्मा को ज्ञानमय माना है ज्ञान और आत्मा को अभिन्न माना है। ज्ञान और आत्मा के अभिन्नपने से चैतन्य की सिद्धि होती है। इस बात को उन्होंने अपनी कृतियों में और टीकाओं में सर्वत्र किसी न किसी रुप में स्याद्वाद के माध्यम से सिद्ध किया है तथापि आत्मा ज्ञानमात्र है। इस बात को समझाने के लिए समयसार में आचार्य कुन्द कुन्द से हटकर एक स्याद्वाद अधिकार की रचना करके दार्शनिक जगत् में महान् उपकार किया है, उनका कथन है कि स्याद्वाद सब को साधने वाला एक निर्वाध अरहंत सर्वज्ञ भगवान का अभिमत है। वह स्याद्वाद सभी वस्तुओं को अनेकांतामक कहता है क्योंकि सभी पदार्थों का अनेक रुप स्वभाव है। ज्ञानमात्र आत्मा वस्तु में भी स्वतः अनेकांतपना है इसको और भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि सहभूत प्रवर्तमान और क्रमरुप प्रवृतमान अनंत चैतन्य के अंश उनको अविभागरुप जो द्रव्य है उससे तो एकपना है तथा अविभाग एक द्रव्य में व्याप्त जो सहभूत प्रवर्तमान वा क्रमरुप प्रवर्तमान चैतन्य के अनंत अंशो स्वरुप पर्यायों से अनेकपना है। अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावरुप होने की शक्ति के स्वभावपने से सतस्वरुप है और पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव होने की शक्ति के स्वभावपने के अभाव से असतस्वरुप है। अनादिनिधन अविभाग एक वृत्ति रुप परिणमन होने से नित्यपना स्वरुप है। और क्रम से प्रवर्तमान एक समय में अनेक वृत्तियों के अंश रुप से परिणमन होने से अनित्यपना स्वरुप है। इस तरह तत्त्वपना, अतत्त्वपना, एकपना, अनेकपना, सत्यपना, असत्यपना, नित्यपना, अनित्यपना प्रकट प्रकाशित होता है।[118]

आचार्य अमृतचंद्र ने स्याद्वाद की उपयोगिता के विषय में प्रश्न उठाकर स्वयं ने जबाव दिया है इस स्याद्वाद का उपदेश क्यों दिया हैं। क्योंकि ज्ञान के बिना आत्मा की सिद्धि नहीं होगी।

आचार्य अमृतचंद्र ने अपने सम्पूर्ण वांडमय में तत्त्व का बोध कराने के लिए स्याद्वाद का उपयोग किया है किन्तु इस स्याद्वाद अधिकार में आत्मा ज्ञानमय है इसको सिद्ध करने के लिए स्याद्वाद का उपयोग किया है किन्तु इस स्याद्वाद में आत्मा ज्ञानमय है इसको सिद्ध करने के लिए ही अनेक प्रकार से कथन किया है। स्याद्वाद का ज्ञान न होने के कारण जीव आत्म तत्त्व से विचलित हो जाता है और स्याद्वाद का ज्ञान हो जाने पर आत्मतत्त्व का बोध हो जाता है उसको कुछ निम्न बिंदुओं द्वारा समझाया है[119]–

1.आत्मा ज्ञानमात्र है इस धारणा में जीव बहकर सम्पूर्ण विश्व ज्ञानमात्र है ऐसी मान्यता अपने अंदर बिठा लेता है परंतु स्याद्वाद इसका समाधान देता है कि आत्मा स्वयं तो ज्ञानमात्र है किन्तु सम्पूर्ण विश्व एकाकार रुप से ज्ञानमात्र नहीं है।

2.आत्मा पदार्थों को जानने से ज्ञेयाकार होने के कारण खण्डित हुआ ऐसा ज्ञानमात्र भाव का अभाव हुआ तब स्याद्वाद ही उसे ज्ञानमात्र भाव का द्रव्य के साथ एकत्व स्थापित करता हुआ अज्ञान को दूर करता है।

3.पदार्थों को जानने के कारण ज्ञान का ज्ञेयाकार संबंध होता है उस ज्ञेयाकार संबंध में ज्ञान और ज्ञेय में भिन्नता हो जाती है ऐसा अज्ञानी मानता है किन्तु स्याद्वाद ज्ञानमात्र भाव के कारण ज्ञान और ज्ञेयाकार में अनेकत्व होते हुए भी एकत्व की सिद्धि करके समाधान देता है।

4.ज्ञानमात्र भाव से परद्रव्यों के परिणमन के कारण ज्ञाता द्रव्य परद्रव्य को जानने के कारण खण्डित हो गया है ऐसा अज्ञानी मानता है किन्तु स्याद्वाद उस अज्ञान को दूर कर ज्ञानमात्र भाव से सब द्रव्य में सत्व सिद्ध करके संतुष्ट करता है।

5.ज्ञानमात्र भाव के कारण सब द्रव्य मैं ही हूँ ऐसा ज्ञान द्रव्य रुप से जानकर स्वयं का नाश करता है तब स्याद्वाद ज्ञानमात्र भाव से परद्रव्य में असत्य सिद्ध करके संतुष्ट करता है।

6.सब यह ज्ञानमात्र भाव अन्य क्षेत्र में विद्यमान ज्ञेय पदार्थों के परिणमन के कारण परक्षेत्र से ज्ञान को सत् मानकर स्वयं का नाश करता है तब स्याद्वाद ज्ञानमात्र भाव का स्वक्षेत्र से अस्तित्व सिद्ध करके अज्ञान भाव को दूर करता है ।

इस प्रकार अनेक बिंदुओं द्वारा आचार्य अमृतचंद्र ने स्याद्वाद का माध्यम बनाकर ज्ञान और आत्मा की अभिन्नता सिद्ध की है।

आगे जाकर आचार्य अमृतचंद्र आत्मा ज्ञानमय है, इस तथ्य को स्याद्वाद के द्वारा चौदह भंगों के माध्यम से समझाने का प्रयत्न करते हैं–तत्–अतत् के दो भंग, एक अनेक के दो भंग, सत् असत् के द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव से आठ और नित्य अनित्य के दो भंग ये सब मिलाकर चौदह भंग हुए।

आत्मा ज्ञान मात्र ही है किन्तु उसके अंदर अनंत शक्तियाँ है इस तथ्य को स्याद्वाद से ही समझा जा सकता है इसलिए आचार्य अमृतचंद्र ने आत्मा की अनंत शक्तियों का वर्णन न करके उनमें जो मुख्य 47 शक्तिया है उनको ही उदाहरण देकर समझाया है संसारी जीव अपने क्षयोपशम ज्ञान से उन अनंत शक्तियों का बोध नहीं कर सकता है। ये 47 शक्तियाँ आत्मा की अनंत शक्तियों का बोध कराने के लिए उदाहरण स्वरुप है।

1.जीवत्व शक्ति, 2.चिति शक्ति, 3.दर्शन शक्ति, 4.ज्ञान शक्ति, 5.सुख शक्ति, 6.वीर्य शक्ति, 7.प्रभुत्व शक्ति, 8.विभुत्व शक्ति, 9.सर्वदर्शित्व शक्ति, 10.सर्वज्ञत्व शक्ति, 11.स्वच्छत्व शक्ति, 12.प्रकाश शक्ति, 13.विकासत्व शक्ति, 14.अकार्यकारत्व शक्ति, 15.परिणम्यपरिणामकत्व शक्ति, 16.त्यागोपादान शून्यत्व शक्ति, 17.अगुरुलघुत्व शक्ति, 18.उत्पाद व्यय धौव्यत्व शक्ति, 19.अस्तित्वमात्रमयी शक्ति, 20.अमूर्तत्व शक्ति, 21. अकारकत्व शक्ति, 22.अभोक्तृत्वशक्ति, 23.अकर्तृत्व निष्क्रियत्व शक्ति, 24.नियत प्रदेशत्व शक्ति, 25.एक धर्म व्यापकत्वशक्ति, 26.साधारणासाधारण धर्मत्व शक्ति, 27.अनंत ध र्मत्व शक्ति, 28.धर्मत्व शक्ति, 29.तत्त्व शक्ति, 30. अतत्त्व शक्ति, 31.एकत्व शक्ति, 32.अनेकत्व शक्ति, 33.भाव शक्ति, 34.अभाव शक्ति, 35.भावाभाव शक्ति, 36.अभाव भाव शक्ति, 37.भावभाव शक्ति, 38.अभावाभाव शक्ति, 39.मात्रमयी भाव शक्ति, 40.भावमयी क्रिया शक्ति, 41.भाव मयी क्रिया शक्ति, 42.भावमयी कर्तृत्व शक्ति, 43.साधकपनेमयी कर्ण शक्ति, 44.सम्प्रदान शक्ति, 45.अपादान शक्ति, 46.अधिकरण शक्ति, 47.संबंध शक्ति।120 इन 47 शक्तियों के होते हुए भी आत्मा ज्ञानमात्रपने को नहीं छोड़ता है।

स्याद्वाद की महिमा का गुणगान करते हुए आचार्य अमृतचंद्र कहते है–
जो सत् पुरुष अनेकांत की दृष्टि से वस्तु की मर्यादा को अनेकांतस्वरुप देखते हैं, वे स्याद्वाद की पवित्रता को प्राप्त करके ज्ञानी हो जाते हैं, वे जिनेन्द्रदेव के स्याद्व ाद न्याय ही वस्तु जैसी है वैसी ही कथन करता है। जैन आत्मा को ज्ञान मात्र नहीं मानते है और जो आत्मा को ज्ञान मात्र मानते हैं, उन्हें क्या लाभ तथा हानि है, इस तथ्य को आचार्य अमृतचंद्र ने स्याद्वाद के द्वारा एवं अपने आप काललब्धि को प्राप्त करके मिथ्यात्व विहीन होते हैं, वे ज्ञान मात्र स्वयं के स्वरुप को प्राप्त करके सिद्ध हो जाते हैं तथा जो स्वयं को ज्ञानमात्र स्वीकार नहीं करते हैं, वे अनंत संसार में भटकते रहते हैं, पुनः इसे स्पष्ट किया है कि जो व्यक्ति स्याद्वाद की प्रवीणता के द्वारा तथा अचल व्रत, समिति, गुप्ति रुप संयम के माध्यम से अपनी ज्ञान स्वरुप आत्मा में उपयोग को तल्लीन कर आत्मा की भावना भाता है, वही पुरुष ज्ञानमय और कियानय के द्वारा उन दोनो में परस्पर मित्रता की भावना प्राप्त करके निजभावमयी प्राथमिक दशा को प्राप्त कर लेता है।122

स्याद्वाद का अंतिम फल मोक्ष है इस रहस्य को उद्घाटित करते हुए आचार्य अमृतचंद्र ने कहा है कि स्याद्वाद के माध्यम से यथार्थ आत्मज्ञान होने से आत्मा प्रकट होती है। मोक्ष का जिज्ञासु व्यक्ति यही चाहता है कि मेरा पूर्ण आत्मिक स्वभाव प्रकट है अन्य भाव बंध मोक्ष मार्ग की कथनी मात्र है उससे कोई प्रयोजन नहीं है।

संदर्भ

1. स्याद्वाद एक चिंतन, पृष्ठ 179
2. तात्वार्थवार्तिक 1/6 सूत्र की व्याख्या
3. आदिपुराण, 501–503
4. आप्तमीमांसा पृ. 90
5. समयसार आत्मख्याती टीका स्याद्वाद अधिकार–10/247
6. धवला 15/25/1
7. परीक्षामुख सूत्र 85
8. स्वयंभू स्तोत्र, श्लोक 131
9. प्रवचनसार, तत्त्वप्रदीपिका टीका 141/200/9
10. पंचास्तिकाय, तत्त्वप्रदीपिका टीका 10
11. प्रवचनसार तत्त्वप्रदीपिका, गाथा 27